तिरंगे कफ़न

दुबला-पतला, पीला-सा, रोगी मगर अकल का तेज़, खाकी निकर और मटमैली-सी कमीज पहने, बिना मोजे के जूते पहने जिसकी नोक उसने ठोकर मार-मारकर सफेद कर दी है, गले में डाकियों जैसा बस्ता लटकाये वह लड़का जब स्कूल से लौटा तो उसने अपने घर के दरवाजे पर ताला लटकता पाया।

राजू का माथा ठनका—कहीं ऐसा तो नहीं हुआ...

पड़ोसी वैद्यजी के घर में घुसते ही उनकी सोलह साल की लड़की शकुन्तला मिली। राजू के अपनी कोई बड़ी बहन नहीं है और वह शकुन को ही सदा से बड़ी बहन समझता रहा है। राजू का रुँआधा चेहरा देखकर शकुन ने उसको अपनी छाती से लगा लिया। छोटा-सा राजू उसकी बाहों में बिलकुल सिमटा हुआ था। घर को इस तरह बन्द पाकर उसका जी अन्दर ही अन्दर न जाने कैसा हो रहा था, आंसू घुमड़ते तो थे मगर निकलते न थे और गला फँस रहा था।

यह बात सन् तीस की है। उन दिनों विदेशी चीजों के बायकाट और नमक सत्याग्रह का जोर था। नमक तो खैर शाम को बनता था, लेकिन

दूकानों पर पिकेटिंग तो पूरे दिन होती रहती। उसी सिलसिले में धर-पकड़ का बाजार भी गर्म था, रोज ही दो चार सौ वालंटियर पकड़े जाते।

राजू की मां बड़ी दिलेर थीं। मुजस्सिम आग समझिए। जिस काम को कोई न करता हो उसके लिए वह पेशपेश। देखने-सुनने में तो कुछ खास न थीं, नाटे कद की, दुबली-पतली, लेकिन हिम्मत और अनथक काम करने में उनका जोड़ न था। दिन-दिनभर पिकेटिंग या जुलूस या मीटिंग या चन्दे के सिलसिले में, झोला हाथ में लटकाये घूमतीं, लेकिन थकन का कहीं नाम नहीं और चेहरे पर थकन चाहे कभी झलक भी जाय लेकिन तबीयत में कोई थकन नहीं। दिनभर की दौड़-धूप के बाद दस बजे रात सोयी हैं, लेकिन बारह बजे भी अगर कोई काम आ पड़े तो झट चप्पल पहन, झोला हाथ में ले तैयार, सिपाही की तरह मुस्तैद, चेहरे पर शिकन नहीं, जबान पर शिकायत का एक शब्द नहीं। कभी कोई अगर उनसे कहता, 'आप को बुरा नहीं लगता अगर आपको कोई कच्ची नींद से जगा दे?' तो वह जवाब देतीं—मान लो थोड़ा बुरा लगा भी तो उससे क्या, आखिर काम तो जरूरी है।....काम भी करने चलिएगा और पूरे आराम की फिक्र में भी रहिएगा, दोनों बातें संग नहीं चल सकतीं। मसल आपने नहीं सुनी है 'एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय'—और फिर मैं शिकायत करूँ भी तो किससे और किस बात की? यह तो मनभाता खाजा है।

राजू का माथा इसलिए और भी ठनका था कि कल रात को खाना खाते समय उसकी मां ने बाबू से बड़े गुस्से में कहा था कि 'इस साले हफीज की अक्ल ठिकाने लगानी होगी।' राजू को भी मालूम है कि अमीनाबाद में कपड़े की सबसे बड़ी दूकान हफीज की है, उधर ही से तो उसके स्कूल का रास्ता है। उसके यहां विलायती कपड़े का सबसे बड़ा

यानी लाखों का स्टाक है। उसे बहुत समझाने की कोशिश की गयी कि यह काम ठीक नहीं है लेकिन उसके दिमाग पर कुछ ऐसी चर्बी चढ़ी हुई कि उसपर किसी बात का कोई असर ही नहीं होता। चर्बी असल में और कुछ नहीं इसी बात की है कि सारे अफसरान उसके बस में हैं, शहर कोतवाल को वह अपने इजारबन्द से लटकाकर घूमता है। पैसा चीज ही ऐसी है। लिहाजा बिलकुल वही किस्सा है, सोलहो आने—सैयां भये कोतवाल अब डर काहे का...

शकुन्तला ने कहा—उसी अमीनाबाद वाले हफ़ीज़ के यहां पिकेटिंग चल रही थी। उसी में बीस औरतें गिरफ्तार हुई हैं, और अम्मा भला कैसे न होतीं, वही तो उस मोर्चे की नायक थीं...जाते वक्त वह मुझ से कह गयी हैं कि राजू को जेल भेज देना, मिल जायेगा। सो चलो कुछ खा लो।

राजू ने ज्यों-त्यों कुछ खाया और उस चिलचिलाती धूप में जेल चला,—लाटूश रोड पार करके ओवरब्रिज से चारबाग़ स्टेशन और उसके भी आगे एक मील...

वहाँ घर के सभी लोग बड़ी देर से मुलाकात की बाट देख रहे थे।

मुलाकात होने पर राजू ने देखा कि मां का चेहरा पहले से भी ज्यादा खिला हुआ है। और जब उसके बड़े भाई दिनेश ने माँ को यह बताया कि उनके जत्थे की गिरफ्तारी के बाद लोगों में जोश और गुस्से का ऐसा उबाल आया कि वे पुलिस के डंडों की परवाह न करते हुए दुकान में घुस गये और विलायती कपड़ों की गाँठें निकाल-निकाल कर बाहर फेंकने और उनमें आग लगाने लगे, उस वक्त राजू की माँ का चेहरा देखने काबिल था, उनके कान खड़े हो गये थे और उनकी आँखों में एक अप्राकृतिक-सी चमक आ गयी थी, तेज़ और निर्मम...दुश्मन को पंजों में दबोच पाने पर आदिम मनुष्य का वन्य उल्लास—

दिनेश बड़े मजे में किस्सा कह रहा था—हफीज मियाँ ने लोगों के ये रंग-ढंग देखे तो उनके हाथ-पाँव फूलने लगे और वह लगे लोगों के सामने दुम हिलाने। जब उनके अफसरान उनकी हिफाजत न कर सके तो अब उसके सिवाय चारा भी क्या था। कई गाँठें जलायी जा चुकी थीं और डर था कि सारी दूकान ही जला कर खाक कर दी जावेगी। ऐसी मांदी हालत में लोगों के हाथ-पैर जोड़ कर उसने किसी तरह अपनी जान बचायी।.. किस्सा-कोताह दूकान आखिरकार बन्द हो गयी, हफ़ीज़ मियाँ की सारी अकड़ फूँ ढीली हो गयी और अब उनकी दूकान पर पचीस ताले लटक रहे हैं।

राजू की माँ ने तृप्ति की एक गहरी साँस छोड़ते हुए कहा—तो चलो, जेल आना अकारथ नहीं हुआ।

लड़ाई में जोश और अक्खड़पन जिस आदमी में होता है, जो मारने-मरने से नहीं डरता, लोग आपसे आप उसी के पीछे चलने लगते हैं। यही वजह थी कि स्वयंसेविकाओं को ऊँची तालीमयाफ्ता, खादी की पतली-पतली साड़ी पहनने वाली बड़ी-बड़ी लीडरानियों से कहीं ज्यादा भरोसा राजू की माँ पर था, बावजूद इसके कि वह कम ही पढ़ी-लिखी थीं और बात का बनाव-सिंगार भी उनके पास नहीं था। उनमें बात बस इतनी-सी थी कि टाट जैसी मोटी खादी की साड़ी पहने वह खुद भी एक निडर, सरकश, लट्ठ वालंटियर थीं, और यही वजह थी कि उनके संग अगर औरतों को झंडा लेकर एक बार मौत की राह पर भी चलना होता तो उनके कदम भारी न पड़ते। वे औरतें कभी-कभी आपस में बात भी करतीं—मिसेज़ खत्री बहुत पढ़ी-लिखी हैं, बड़े-बड़े लीडरों से उनकी रसाई भी बहुत है, बोलती भी वह अच्छा हैं, लेकिन राजू की माँ की बात ही कुछ और है। वह सचमुच हमीं में से हैं। उनके संग काम करने में जो मजा आता है वह किसी के संग नहीं आता। वह हमारे आगे हों फिर

हमें काहे का डर ? वह पुलिस-वुलिस किसी को कुछ सेटती थोड़े ही न हैं; उनको जहां जाना है वहाँ वह जायेंगी और हजार बार जायेंगी, डंके की चोट पर जायेंगी रोक तो ले कोई माई का लाल...पुलिस नहीं पुलिस का बाप भी उन्हें नहीं रोक सकता बहुत करेगा लट्ठ मार कर गिरा ही तो देगा....उस दिन की याद नहीं तुमको (मगर हाँ, तुम नहीं थीं) जब हम लोग कचहरी पर झंडा लगाने गये थे। बाप रे बाप कितनी पुलिस उस दिन खड़ी कर दी गयी थी, उनमें घुड़सवार भी कितने थे। बाकायदा मोर्चा था। काम वह जरूरी था लेकिन करने वाला न मिलता था। तब गुप्ताजी ने राजू की माँ को अपने दफ्तर में बुलवाया और परिस्थिति उनके सामने रक्खी। राजू की माँ तो जैसे उधार खाये बैठी थीं, बोलीं—मैं औरतों को लेकर जाऊंगी। गुप्ता जी ने कहा—सोच लीजिए, इसमें खतरा बहुत है, आप के बाल-बच्चे भी हैं। राजू की माँ ने कहा—गुप्ता जी खतरा कहाँ नहीं है, और बच्चे तो भगवान के हैं। लड़ाई तो काम ही जोखिम का है। ...और फिर मैं तो यह भी समझती हूँ कि लिखी मौत कोई टाल नहीं सकता, और जब तक जिन्दगी है तब तक कोई मार नहीं सकता। गरज यह कि गुप्ता जी समझ गये कि टेढ़े आदमी से उनका पाला पड़ा है।.... और फिर बिट्टो, मैं तुम्हें क्या बताऊँ वह दफ्तर से बाहर आयीं तो उनके अंग-अंग से जैसे चिनगारी छूट रही थी, या जैसे किसी ने शेरनी का बच्चा चुरा लिया हो। उनकी यह आनबान देखकर तो हम लोगों में न जाने कहाँ की बला की हिम्मत आ गयी और वही औरतें जो सहम कर अपने घरों में दुबक गयी थीं अब मरने-जीने को तैयार हो गयीं।...

बिट्टो ने पूछा—तो फिर गयीं तुम लोग ?

उस औरत ने कहा—हाँ गये और डंके की चोट पर गये। हम लोग कुल मिलाकर साठ थीं। सबसे आगे राजू की माँ एक बड़ा-सा झंडा हाथ में लिये, और पीछे-पीछे हम, छोटे-छोटे झंडे लिये हुए। हम लोग जोश के साथ गाना गाते और नारे लगाते चले जा रहे थे। अच्छा ही हुआ कि

लाठी-गोली नहीं चली वनां हम लोग तैयार इसके लिए भी थे। राजू की माँ ने लोगों को पहले ही से खतरे की तरफ से आगाह कर दिया था जिसमें बाद में कोई दोष न दे कि बताया नहीं। पुलिस वालों ने अपनी लाठियाँ जोड़कर तीन बार हमारा रास्ता रोकना चाहा, दारोगा ने यह डर भी दिखलाया कि वह लाठी चार्ज का हुक्म दे देगा। लेकिन इसका हम पर क्या असर होता, हम तो सभी बातों के लिए तैयार गयी थीं, राजू की मा ने हमारी सबकी तरफ से कहा—आप को जो भी करना हो कीजिए, मगर बराय मेहरबानी ये बँदरघुड़कियाँ हमें मत दीजिए। हम यहाँ झण्डा लगाने आये हैं और लगावेंगे।...लाठीचार्ज करवाना कोई हँसी-खेल तो था नहीं, सारे लखनऊ शहर में तहलका मच जाता, आग लग जाती। चुनांचे उसे रास्ता देना पड़ा। बस फिर क्या था, उसी पगली रजनी ने कल्लोटा मारा और यह जा वह जा, लेकिन झंडा लगाकर वह उतरी नहीं है कि तब तक पुलिस की दो लारियाँ आ गयी थीं और वह सब हम लोगों को उसमें भरकर ले गये और कोई पन्द्रह मील दूर उसी मलीहाबाद वाली सड़क पर एक बीहड़ जगह में ले जाकर छोड़ आये...उस दिन कहीं तीन बजे रात हम लोग अपने घर पहुँचे। मगर उस दिन जैसा अनुभव भी हमें पहले कभी नहीं हुआ था। उस दिन पहली बार मुझे ऐसा लगा था कि जैसे मैं अपने आपे में नहीं हूँ, जैसे मैंने कोई नशा किया है, मेरे हाथ-पैर अपने बस में नहीं हैं और कोई मेरे भीतर बैठा-बैठा जैसे पूरे वक्त मुझे एड़ लगा रहा है और मैं आगे बढ़ती चली जा रही हूँ बढ़ती चली जा रही हूँ, मेरे अगल-बगल कौन लोग हैं क्या है मुझे कुछ नहीं पता, बस मेरे पैर मेरे दिल को ताल दे रहे हैं...पता नहीं ऐसा क्यों हो जाता है!.....

२

राजू की मां को दो साल की कड़ी कैद हुई।

छूटकर आयीं तब तक आंदोलन ठंडा पड़ चुका था। राजू की माँ को यह बात बहुत अजीब-सी लगी। अब कहीं कुछ करने ही को नहीं था। हाँ घर का इन्तजाम सब बिलकुल ठीकठाक करना था, सब एक सिरे से छिन्न-भिन्न हो रहा था, बिन घरनी घर भूत का डेरा बना हुआ था। कोई तो था नहीं जो देखभाल करता। अब राजू की माँ को यही काम था।

...लेकिन अभी साल भी नहीं पूरा होने पाया था, घर ठीक भी नहीं हुआ था कि राजू के पिता हैजे में चल बसे। बहुत दवा-दर्पन किया गया, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

अब राजू, दिनेश और सबसे छोटी लीला का भार सँभाले राजू की माँ दुनिया में अकेली थी।

३

धीरे-धीरे करके पन्द्रह साल का जमाना एक लंबी कठिन रात की तरह गुजर गया। राजू की मां ने अपनी जिन्दगी के सबसे मुश्किल मोर्चे को सर करके अपने बच्चों का और अपना पेट पाला, उनको पढ़ाया-लिखाया, लीला की शादी की। अब वह राजू, दिनेश और दिनेश की बहू के संग उसी घर में रहती है। राजू और दिनेश दोनों ही काम से लगे हुए हैं—दिनेश की जेनरल मर्चेंडाइज़ की दूकान है और राजू डाक्टर है। अब पैसे की वैसी कमी नहीं है और कहना चाहिए कि पचीसों साल के संघर्ष के बाद अब राजू की मां का बुढ़ापा आराम से कट रहा है।

× × ×

बहुत प्रतीक्षा के बाद पन्द्रह अगस्त का ऐतिहासिक दिन आया। लोग खुशी से पागल हो उठे। उनकी सदियों की गुलामी का नागपाश कट गया था, अब वे आजाद थे। उनका जिस्म आजाद था, उनकी रूहें आजाद थीं, उनकी जिन्दगी आजाद थी। हवा में आजादी के फरेरे उड़ रहे थे। आजादी की इस महफिल के ऊपर आसमान एक नीले चँदोवे की तरह तना हुआ था और महफिल शहनाई और नफीरी की तानों और अलापों से गूँज रही थी। शहर भर में फाटक ही फाटक बने थे, कहीं बड़ी-बड़ी तसवीरें और भारत माता और नेताओं की मूरतें भी रखी हुई थीं। चारों तरफ तिरंगे की बहार थी, झंडा है तो तिरंगा, सजावट है तो तिरंगी। अशोक की पत्तियों से शहर की खुश्क नहूसत पर गांव की हरियाली का रंग छा गया है। लोग जगह-जगह टोलियों में खड़े अपने मुहल्ले की सजावट का शीन-क़ाफ़ दुरुस्त कर रहे हैं या ठिठोली कर रहे हैं। बिलकुल मेले का दृश्य है—

लोगों के घरों में भूख और गरीबी के, जेठ की दुपहर की तरह खुश्क और मनहूस, चिलचिलाते हुए रेगिस्तान फैले हुए थे, लेकिन उन पर उनकी उमंगों के सावन ने हरियाली की बरखा कर दी थी। तकलीफों से उनके पैर शल थे मगर उनकी उम्मीदें जिन्दा थीं। जिस दिन का उन्हें इतना इन्तजार था वह दिन आज था। इस दिन से उन्हें बड़ी उम्मीदें थीं, इस दिन का उन्हें बहुत आसरा था। अब उनकी जिन्दगी का एक नया दौर शुरू होगा, वह देखो आसमान में आजादी का सूरज चमक रहा है, रात खतम हुई—गुलामी की, सर्द, घिनावनी, डरावनी, तारीक रात जिसमें उल्लू बोलते हैं और सियार। अब भूख गरीबी और जहालत—अंग्रेजी सल्तनत की इन बरकतों, गुलामी की इन नहूसतों से उन्हें छुटकारा मिलेगा, अब उनकी अपनी हुकूमत उन्हें पढ़ायेगी-लिखायेगी, उनकी अक्लों को रौशन करेगी, उनकी इंसानियत को उजागर करेगी, उन्हें इंसान की जिन्दगी बसर करने का मौका देगी, अब तक वह जानवर थे

काले आदमी थे; अब वह आदमी हैं और अपने मुल्क के मालिक हैं। अब वह सुख पावेंगे, उनके बच्चे सुख पावेंगे, अब जिन्दगी का नक्शा ही कुछ और होगा—

राजू की मां को भी चौदह तारीख की रात को नींद नहीं आयी। उसके दिल में अजब एक हलचल मची हुई थी। यह सही है कि इधर बरसों से उसकी हालत ऐसी नहीं थी कि वह सक्रिय राजनीति में कुछ खास हिस्सा ले सकती, लेकिन जनता से उसका संबंध अब भी कायम था और गांधी जी के लिए, कांग्रेस के लिए अब भी उसके दिल में वैसी ही भक्ति थी जैसी कि पन्द्रह साल पहले थी, खद्दर पहनना उसकी आदत में दाखिल था और उसे इस बात का भी गर्व था कि सन् बयालिस में उसने कम से कम डेढ़ दर्जन लड़कों को अलग-अलग वक्तों पर अपने घर में छुपाया था।

इस वक्त वह बैठी सोच रही थी :

इसी दिन के लिए न जाने कितने नौनिहाल फांसी का झूला झूले, न जाने कितनों ने लाठियाँ खायीं गोलियां खायीं, हाथ पैर तोड़े, जान गँवायी, जिन्दगी में आराम से मुँह मोड़ा और जेल से नाता जोड़ा, लंबी-लंबी सजाएँ काटीं, अपना घरबार तहस-नहस किया, मिटे और बरबाद हुए—क्या नहीं किया। मेरे सामने भी तो शायद इसी दिन की कोई धुँधली-सी तसवीर रही होगी। वह दिन, कल जिसकी धुँधली-सी तसवीर हमारे मन के किसी निभृत कोने में थी, अब कल आजादी के सूरज में दप् दप् दमकेगा; तमाम स्याह धब्बे जब मिट जायेंगे और नयी सुबह होगी तो उस दिन की एक-एक रग नयी पत्ती की रगों की तरह हमें साफ और उभरी हुई नजर आयेगी; वह दिन जो कभी हमारे दिल में था कल हमारी मुट्ठी में होगा—इसी सब उधेड़बुन में उसे रात भर नींद नहीं आयी। पुरानी साथिनों की धुँधली-सी तसवीरें तालाब की तलहटी से

उछल कर सतह पर आनेवाली मछलियों की तरह उसके मन में आयीं। रात बड़ी देर तक वह अपने घर के लिए और अपने मुहल्ले के लिए दो बड़े-बड़े झंडे सीने में लगी रही। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे कि उसके अन्दर की हलचल कुछ कम हो। तकलीफ उसे भी अपने चारों ओर दिखायी देती थी लेकिन उसने 'आजादी की राह कँटीली होती है, आजादी फूलों की सेज नहीं है' के मन्त्र से तकलीफ के भूत को फिलहाल अपने पास से भगा दिया था और सचमुच खुश थी कि अपनी जिन्दगी में ही उसने वह दिन देख लिया, गांधी महात्मा ने वह दिन उसे दिखा दिया—

४

फिर दूसरी पन्द्रह अगस्त आयी—

छिन भर की वह सुबह कब और कैसे साल भर की रात हो गयी, किसी को पता ही न चला। उम्मीदों का कपूर उड़ने के लिए साल भर का वक्त कम नहीं होता। अब उनके सपनों के पर कट गये थे, उनकी उमंगें जख्मी थीं, उनकी उम्मीदें मर चुकी थीं...

राजू की मां भी अपनी उम्मीदों की लाश गोद में लिये बैठी थी। 'कहीं कुछ नहीं हुआ!' यह वह आजादी नहीं थी...नहीं, उसे धोखा हुआ था, जबर्दस्त धोखा...नहीं, आजादी की शकल ऐसी नहीं होती, कभी ऐसी नहीं होती, नहीं यह वह तसवीर नहीं है जो उसके दिल में थी...

किसी ने उसके दिल की उस तसवीर को इतनी बेरहमी से बीचोबीच से चीरा है कि उसके साथ-साथ उसका कलेजा भी चाक हो गया है। उस का दिल जख्मी है, उसकी गोद में उसकी उम्मीदों की लाश है और उसके दिमाग में बीते दिनों की वह तमाम बातें घूम रही हैं—वह लाखों-लाख लोगों की सभाएँ, वह मीलों लंबे जुलूस, वह आसमान को थप्पड़ मारनेवाले नारे, वह लड़ाइयाँ, मौत से वह आमने-सामने की मुलाकातें,

जेल की वह सफेद बेजान दीवारें और निचाट सूनी रातें, वह सब क्या इस...इस आजादी के लिए था, वह जो करोड़ों कदम एक साथ उठ रहे थे वह क्या इसी दिन की तरफ बढ़ रहे थे ? इस दिन की तरफ ?

सख्त बेचैनी की हालत में वह न जाने किस पर अपना इनकार जाहिर करने के लिए जोर-जोर से अपना सर झटक रही थी जब उसके पड़ोसी कपूर साहब की पत्नी ने आकर उससे कहा—अरे, राजू की मां, अभी तुम ने कपड़े भी नहीं बदले ? झण्डाभिवादन में नहीं चलोगी ? और यह क्या तुमने अपने यहाँ भी झण्डा नहीं लगाया अब तक ?

राजू की माँ उसी तरह अपनी उम्मीदों की लाश गोद में लिए बैठी रही। उसके गले से सिर्फ एक भारी-सी आवाज निकली—मैं ग़म मना रही हूँ.....

...और उसी वक्त पिछले उत्सर्गों के इतिहास ने गौरीशंकर की चोटी से छलांग लगायी—

ज़र्क़ बर्क़ खादी की साड़ी में लिपटी हुई कपूर साहब की बीवी इस वक्त इस बेहूदगी की ताब न ला सकीं और बाहर निकल गयीं जहाँ नीलगूँ मगर गर्द से ढँके हुए आसमान के साये में मुर्दा उम्मीदों के तिरंगे कफन हवा में उड़ रहे थे, जहाँ लोग एक दूसरे की निगाहें बचाते हुए चल रहे थे क्योंकि उन निगाहों में डरावने सवाल थे, जहाँ बड़े-बड़े तुन्दिल सेठों और चिकनी मुसकराहट के महाजनों के सायबानों में बेवक्त की शहनाइयाँ बज रही थीं जिनकी सख्त-करख्त आवाज़ नंगे और भूखे इंसानों की तिलमिलाहटभरी चीखों को डुबा देने की नाकाम कोशिश कर रही थी।